शिशुपालवध की हस्तलिखित टीकाएँ

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा
समन्वयक
वैदिक हैरिटेज एवं पाण्डुलिपि शोध संस्थान, जयपुर

महाकवि माघ प्रणीत 'शिशुपालवध' महाकाव्य पर अनेकानेक टीकाओं का उपलब्ध होना महाकाव्य के गम्भीरार्थबोधकत्व के साथ साथ अध्येताओं की "नारिकेलफलसन्निभ" की प्रतीति के लिए वैदग्ध्य-प्रियता की परम्परा के सातत्य को भी सिद्ध करता है। इस परम्परा में निम्न टीकाकारों की उपलब्ध टीकाओं का उल्लेख प्रसङ्गोपात्त प्रतीत होता है :-

1. अनन्त देवयानि
2. चारित्रवर्धन
3. कविवल्लभ चक्रवर्ती
4. चन्द्रशेखर
5. दिनकर
6. देवराज
7. बृहस्पति
8. भगदत्त
9. भगीरथ
10. भरतसेन
11. मल्लिनाथ
12. महेश्वर पञ्चानन
13. लक्ष्मीनाथ
14. वल्लभदेव
15. श्रीरङ्गदेव

इन टीकाओं के अतिरिक्त अथवा इनमें उल्लिखित टीकाओं की पूरक कही जाने योग्य टीकाएँ 'प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान' के जोधपुर संग्रह में उपलब्ध हुई हैं। इस प्रकार नूतनतः उपलब्ध चार भाष्यों का परिचय विदग्धजनों के सम्मुख प्रस्तुत करना ही इस पत्र का उद्देश्य है।

थियोडोर आफ्रेट ने अपने बृहत्सूचीपत्र में माघ-काव्य की उपलब्ध टीकाओं का परिचय देते हुए दिनकर नामक टीकाकार का उल्लेख किया है। उन्हें इस टीका का कुछ अंश ही उपलब्ध हुआ है। प्रतिष्ठान संग्रह में उपलब्ध पाण्डुलिपि का विवरण इस प्रकार है :-

ग्रन्थांक 1704; पत्र संख्या-90; दश सर्गात्मक

भाष्य प्रारम्भ करने से पूर्व पद्यचतुष्टयी में टीकोपोद्घात द्रष्टव्य है :-

कलयामि यदोः कुलस्य भूषां निगमान्तै कनिवेद्यमानमर्थम् ।
बहुना नरभावमाश्रयन्तं नवनीतं मणिकान्ततो ही लिहन्तम् ॥ 1 ॥

प्रबन्धसिन्धूत्त रणैकहेतोः प्रयस्यतो मे न वलं वभस्य ।
निरुग्गं निर्विघ्ननिबद्धसिद्धे विदेहि लम्बोदरत्वम् ॥ 2 ॥

अधिगुणसदुक्ति मुक्तां गुणगणसुभगस्य माघकाव्यस्य ।
बालावबोधविधाय तनवें सर्वानुवादिनीं टीकाम् ॥ 3 ॥

विदुषां सरणौ सभाविविक्षौ स्खलतो मेऽल्पधियो न जातु भीतिः ।
करुणावरुणालयो हि सन्तो विगुणानां सगुणीकृतौ कृतार्थाः ॥ 4 ॥

यद्यपि उपर्युक्त श्लोक-चतुष्टयी में टीका के "सर्वानुवादिनी" नामकरण से इतर विवरण नहीं है, परन्तु प्रायः प्रत्येक सर्ग की टीका के अन्त में "श्रीमद्धर्माङ् गदसूनोः कमलानन्दनस्य दिनकर मिश्रस्य" इस प्रकार का सन्दर्भ उपलब्ध होने से टीकाकार का नामतः निर्देश भी स्पष्ट हो जाता है।

'रघुवंश' की दिनकरकृत टीका का उल्लेख भी उपलब्ध होता है। इस टीका की रचना 1385 ई. में की गई है। माघकाव्य के टीकाकार दिनकर ही 'रघुवंश' के टीकाकार हो सकते हैं, परन्तु अन्यान्य प्रमाणों के उपलब्ध होने तक निश्चयात्मक स्वर में कुछ कहना कठिन है।

प्रतिष्ठान में उपलब्ध द्वितीय टीका सरस्वती-तीर्थ की है। इस पाण्डुलिपि में 80 पत्र हैं तथा सातवें सर्ग तक ही टीका उपलब्ध है। पाण्डुलिपि ग्रन्थाक-27635 है।

प्रस्तुत पाण्डुलिपि में प्रथम तीन सर्गों की समाप्ति पर क्रमशः टीकाकार का नाम भारतीतीर्थ दिया गया है। यथा-

इति यतिकुलमौलेर्भारतीतीर्थनाम्नो, विदितसकलविद्याशालिनो माघकाव्ये ।
शिशुगुणकृतबोधव्या क्रियायां व्यरंसीत्, हरिचरितमनोज्ञ सर्ग आद्योऽनवद्यः ।।

जबकि अवशिष्ट चार सर्गों के अन्त में 'इति सरस्वतीतीर्थ रचितायाम्' इस प्रकार से सरस्वतीतीर्थ अभिधान से टीकाकार का उल्लेख है। आफ्रेट ने 'मेघदूत' और 'काव्यप्रकाश' के टीकाकार के रूप में नरहरि का उल्लेख किया है, जिन्होंने संन्यासाश्रम में सरस्वतीतीर्थ अभिधान ग्रहण किया था। इनका काल तेरहवीं शती है। सायणाचार्य के गुरु के रूप में प्रसिद्ध भारतीतीर्थ, वरदराज के भाष्यकार सरस्वतीतीर्थ और माघ के उपर्युक्त टीकाकार सरस्वतीतीर्थ का पौर्वापर्य संदिग्ध है।

प्रतिष्ठानीय संग्रह में मूलदेवी और किन्हीं विष्णुदास के आत्मज द्वारा लिखी गयी माघकाव्य की केवल द्वितीय सर्ग की टीका अधिग्रहण संख्या 33495 पर उपलब्ध है। इस पाण्डुलिपि में पत्र 33 हैं, तथा प्रति अपेक्षाकृत आधुनिक है। टीका के अन्त में टीकाकार का उल्लेख द्रष्टव्य है।

यं प्रासूत सुविष्णदासविबुधाः श्रीमूलदेव्याः सुतं, भक्त्याराधितसद्गुरुश्चिरतरं शास्त्राणि योऽधीतवान् । तेन छात्रहितेच्छुना विरचिते माघार्थसंदीपने सर्गः स्वर्गसुखान्निसर्गमधुरः पूर्णो द्वितीयोऽभवत् ।।

सम्पूर्ण माघकाव्य पर उपलब्ध नवीन टीका के रूप में ललितकीत्ति गणि की टीका का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत पाण्डुलिपि की अधिग्रहण संख्या 40309 है तथा इसमें 141 पत्र हैं। टीकाकार लब्धकल्लोल गणि के शिष्य तथा कीर्त्तिरत्न सूरि के प्रशिष्य हैं। टीका का नाम "ललितमाघदीपिका" अथवा "सन्देहान्धकारध्वंसनदीपिका" दिया गया है। यथा पुष्पिका:-

इति श्रीखरतरगच्छे वरेण्याचार्यश्रीकीर्त्तिरत्न सूरिसन्तानीयवाचनाचार्य - लब्धकल्लोलगणिक्रमाम्भोजभृङ्गायमान शिष्यवाचनाचार्य ललितकीर्त्तिगणिविरचितायां ललितमाघदीपिकायां विंशतिमः सर्गः सम्पूर्णः।

पुरातत्त्वाचार्य मुनिजिनविजय जी ने खरतरगच्छगुर्वावलिप्रबन्ध में 1381 वि. सं. में चतुर्विंशति जिनालय स्थापना के साथ क्षुल्लकषट्क में ललितकीर्त्ति का उल्लेख किया है। अतः ललितकीर्त्ति यदि ये ही वे हैं, तो 14 वीं शती के पूर्वार्द्ध में होने चाहिए, जबकि नाथूराम प्रेमी ने 'जैन साहित्य और इतिहास' में ललितकीर्त्ति का यशकीर्त्ति के गुरु के रूप में उल्लेख किया है। हरिश्चन्द्र कायस्थ कृत 'धर्मशर्माभ्युदय' की एक सामान्य टीका की रचना यशकीर्त्ति ने

की थी। इस टीका की एक पाण्डुलिपि सरस्वती भण्डार, बम्बई में उपलब्ध है तथा इसका लिपि समय 1652 वि. सं. है। इनके अतिरिक्त ललितकीर्त्ति के विषय में अन्य प्रमाण दृष्टिगत नहीं हुआ है।

वस्तुतः उपर्युक्त टीका 140 पत्रों में ही समाप्त हो जाती है। टीकाकार के नामोल्लेख व पुष्पिका यहीं पर है। अतः पत्र संख्या 141 पर दिया गया निम्न पद्यात्मक विवरण विचारणीय है :-

चन्द्रबाणाश्वसोभेन युक्ते संवत्सरे वरे।
चैत्रार्जुनीय पक्षस्य द्वादश्यां शुक्रवारके ।। 1 ।।

परोपकारं सततं बिभर्ति यत्संगते बुद्धिरियर्ति पारम्।
तमन्वहं लोकवरं प्रवन्दे सद्ज्ञानमूर्तिं जगदादिकीर्त्तिम् ॥ 2 ॥

अन्तः शत्र समूहो यो हतः क्षान्त्यादिना शुभः।
जगत्कीर्त्तिगुरुर्जीयात् येनासौ लोकपूजितः ।। 3 ।।

मायोर्माश्रवं देव सन्तुष्टो भव सर्वदा।
उद्धारयसि लोकांस्त्वं संसाराम्भोनिधौ यतः ।।। 4 ॥

माघः सम्पूर्णतां नीतो दोदराजेन निश्चितम्।
भट्टारकशिरोरत्न जगत्कीर्त्तिनिदेशतः ॥ 5 ॥

लक्ष्मीदासेन येनायं दोदराजः सुपाठितः।
पण्डितेन प्रसिद्धा सा प्रतिष्ठाकारि सिद्धिदा ।। 6 ।।

अनादी नववाक्पुंजन्यत्कृता ज्ञानसम्पदा।
सन्ततं गोवितरष्टनिर्मलीकृतजन्मना ।। 7 ।।

दोदराजेन टीकेयं लिखिता बुद्धिहेतवे।
वाचकस्य सदा भूयान्मंगलं बुद्धिदायका ।। 8 ।।

कम्बुलक्षम्याः जगत्पूज्यः सात्विकानां शिरोमणिः।
नेमिनाथः जिनः पायान्मोहमल्लविमर्दकः ॥ 9 ॥

पत्र सं. 140 पर विषय-वस्तु की समाप्ति पश्चात् उपलब्ध पत्र के इस विवरण को सामान्यतः दोदराज लिपिकर्ता का विवरण माना जा सकता है। तदनुसार भट्टारक जगत्कीर्ति के निर्देश से लक्ष्मीदास के शिष्य दोदराज ने प्रस्तुत पाण्डुलिपि का 1751 में लेखन किया। 'वाचकस्य सदा भूयात्' इत्यादि पंक्ति इसी अर्थ को पुष्ट करती है। परन्तु यह अन्तिम पत्र कागज की दृष्टि से नवीन प्रतीत होता है तथा इसका आकार भी भिन्न है। पुनश्च 140 पत्रों में उपयुक्त पञ्चपाठ शैली का निर्वाह इस पत्र पर नहीं किया गया है तथा हस्तलेख की असमानता भी दृष्टिगोचर है।

इन कारणों से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी अन्य माघ टीका का अन्तिम पुष्पिका का पत्र प्रस्तुत पाण्डुलिपि के साथ रख दिया है। यदि इसे स्वीकार किया जाये तो निम्न पंक्तियों पर पुर्नावचार किया जाना चाहिए -

(1) माघः सम्पूर्णतां नीतो दोदराजेन निश्चितम्

(2) पण्डितेन प्रसिद्धा सा प्रतिष्ठाकारिसिद्धिदा

(3) टीकेयं लिखिता बुद्धिहेतवे

अर्थात् भट्टारक जगत्कीर्ति के निर्देशानुसार दोदराज ने माघ टीका को सम्पूर्ण किया। सम्भावना यह है कि किसी विद्वान् द्वारा लिखी अपूर्ण टीका को दोदराज ने पूरा किया हो। फिर पण्डित के रूप में प्राप्त प्रतिष्ठा तथा -

अनादीनववाक्यपुंजन्यत्कृता ज्ञानसम्पदा' जिस दोदराज के साथ संलग्न हैं, उसे केवल प्रतिलिपिकर्ता मानना न्यायसंगत नहीं है, क्योंकि यह टीका 'बुद्धिहेतवे' लिखी गई है। इसमें "बद्धमुष्टिकटिग्रीवा" वाली प्रतिलिपिकर्ता को कष्टता कहीं पर भी ध्वनित नहीं होती है। दोदराज जैनमतानुयायी था, यह तथ्य- "नेमिनाथजिनः पायाद्" इत्यादि से स्पष्ट प्रतीत होता है।

उपर्युक्त चर्चा को उपसंहृत करते हुए दोदराज को माघ के अज्ञात टीकाकार के रूप में भले ही सम्यग्रूप से प्रतिष्ठापित न किया जा सके, फिर भी महाकवि माघ के सन्दर्भ में नवीन अन्वेष्य तथ्यों में दोदराज का समावेश अवश्य किया जाना चाहिए।